


2077

# कवितारत्नाकर

श्री कार्तिकप्रसाद खत्री।

द्वारा

संग्रहीत

और

बी० एम० एण्ड सन

द्वारा

प्रकाशित.



Printed At the Sidheshwar Press

BENARES.

१मबार १,००० दाम ।)

# सूचना।

स्वर्गीय श्री बाबू कार्तिक प्रसाद जी की यह पुस्तक अन्ति मही समझनी चाहिये। गोकी अभी कई एक पुस्तकें उनकी लिखी अधूरी हैं किन्तु यह लिख तो कभी गई थी। परन्तु यह उनकी जीवितावस्था में प्रेस से छप कर जा नहीं सकी इसका हमलोगों को बहुत दुःख है। कवितारत्नाकर का यह प्रथम भाग छापकर प्रकाशित किया जाता है।

अशा करताहूं कि दूसरा भाग भी शीघ्रही आप लोगों के सन्मुख रक्खा जायगा।

बनारस

मनेजर
सिद्धेश्वर प्रेस।

# भूमिका ॥

श्रीगणेशायनमः ॥

विद्वन्मण्डली में जब लोग बैठ कर वार्तालाप करते हैं तब मौके मौके पर श्रुति स्मृति विविध पुराणादि तथा अनेक विद्वान कवीश्वरों के कहे हुए वाक्यों के एक दो पादों के प्रयोग से अपने वार्तालाप की शोभा बढ़ाते हैं, परन्तु उन वाक्यों के चारों पदों का बिरले लोगों को स्मरण रहता है, इसलिये उन श्लोकों को अनेक स्थानों से संग्रह कर तथा उनकी भाषा में व्याख्या कर सर्वसाधारणके हित के लिये प्रकाश करके आशा करते हैं कि गुणी जन मेरी इस धृष्टता को क्षमा करेंगे, क्योंकि कहा भी है कि,–

शूपवद्दोषमुत्सृज्य, गुणं गृण्हन्ति साधवः ।
दोषग्राही गुणत्यागी ह्यसाधुस्तितयुर्यथा ॥

किमधिकं निवेदनमिदम् ॥

संग्रहकर्ता

# कवितारत्नाकर।

## सर्व्वकार्य्येषु माधवम्॥ १ ॥

माधवो माधवो वाचि माधवो माधवो हृदि। स्मरन्ति साधवः सर्वे सर्वकार्य्येषु माधवम्॥ इति पाण्डवगीता॥

भाषानुवाद।

साधुजन मुख से माधव माधव उच्चारण करते हैं, हृदय से माधव माधव चिन्ता करते हैं और सब कामों में सर्वदा माधव का स्मरण करते हैं॥

## यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी ॥ २ ॥

देवे तीर्थे द्विजे मन्त्रे दैवज्ञे भेषजे गुरौ॥ यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी॥ इतिऋषिवाक्यम्॥

देवता, तीर्थ, ब्राह्मण, मन्त्र, दैवज्ञ, गुरु, और औषधि में जो जैसी भावना करता है, उसे वैसीही फलसिद्धि होती है॥

## न देवः सृष्टिनाशकः ॥ ३ ॥

न माता शपते पुत्रं न दोषं लभते मही। न हिंसां कुरुते साधुर्न देवः सृष्टिनाशकः ॥ इति भारतीयम् ॥

माता पुत्र को शाप नहीं देती, पृथ्वी कभी कोई दोष नहीं ग्रहण करती, साधु लोग कभी किसी प्रकार की हिंसा नहीं करते और देवता कदापि सृष्टि का नाश नहीं करते हैं ॥

अन्यच्च।

न बीजहारिका पृथ्वी न विप्रो वेदनाशकः। न धर्म्म-नाशको राजा न देवः सृष्टिनाशकः ॥ इति महाजन-गृहीत-वाक्यम् ॥

पृथ्वी बीजहरण नहीं करती, ब्राह्मण वेद नष्ट नहीं करते, राजा धर्म्म नष्ट नहीं करते और देवता सृष्टि का नाश नहीं करते हैं ॥

## यतो धर्म्मस्ततो जयः ॥ ४ ॥

जयोऽस्तु पांडुपुत्राणां येषां पक्षे जनार्दनः। यतः कृष्ण-स्ततो धर्म्मो यतो धर्म्मस्ततो जयः ॥ इत्युद्योगपर्व्वणि ॥

भीष्मदेव बोले कि जिस पक्ष पर कृष्णचन्द्र हैं, ऐसे पांडु-त्रों की जय हो, क्योंकि जिस ओर कृष्ण हैं, उस ओर

# कवितारत्नाकर।

---

## सर्व्वकार्य्येषु माधवम्॥ १ ॥

माधवो माधवो वाचि माधवो माधवो हृदि। स्मरन्ति साधवः सर्वे सर्वकार्य्येषु माधवम् ॥ इति पाण्डवगीता ॥

### भाषानुवाद।

साधुजन मुख से माधव माधव उच्चारण करते हैं, हृदय से माधव माधव चिन्ता करते हैं और सब कामों में सर्वदा माधव का स्मरण करते हैं ॥

## यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी ॥ २ ॥

देवे तीर्थे द्विजे मन्त्रे दैवज्ञे भेषजे गुरौ ॥ यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी ॥ इतिऋषिवाक्यम् ॥

देवता, तीर्थ, ब्राह्मण, मन्त्र, दैवज्ञ, गुरु, और औषधि में जो जैसी भावना करता है, उसे वैसीही फलसिद्धि होती है ॥

# न देवः सृष्टिनाशकः ॥ ३ ॥

न माता शपते पुत्रं न दोषं लभते मही । न हिंसां कुरुते साधुर्न देवः सृष्टिनाशकः ॥ इति भारतीयम् ॥

माता पुत्र को शाप नहीं देती, पृथ्वी कभी कोई दोष नहीं ग्रहण करती, साधु लोग कभी किसी प्रकार की हिंसा नहीं करते और देवता कदापि सृष्टि का नाश नहीं करते हैं ॥

अन्यच्च ।

न बीजहारिका पृथ्वी न विप्रो वेदनाशकः । न धर्म्म-नाशको राजा न देवः सृष्टिनाशकः ॥ इति महाजन-गृहीत-वाक्यम् ॥

पृथ्वी बीजहरण नहीं करती, ब्राह्मण वेद नष्ट नहीं करते, राजा धर्म्म नष्ट नहीं करते और देवता सृष्टि का नाश नहीं करते हैं ॥

# यतो धर्म्मस्ततो जयः ॥ ४ ॥

जयोऽस्तु पांडुपुत्राणां येषां पक्षे जनार्दनः । यतः कृष्ण-स्ततो धर्म्मो यतो धर्म्मस्ततो जयः ॥ इत्युद्योगपर्व्वणि ॥

भीष्मदेव बोले कि जिस पक्ष पर कृष्णचन्द्र हैं, ऐसे पांडु-ओं की जय हो, क्योंकि जिस ओर कृष्ण हैं, उस ओर

अवश्य धर्म्म भी है और धर्म ही से जय है ॥

## यतः कृष्ण स्ततोजयः ॥ ५ ॥

यत्र धर्म्मो द्युतिः कान्तिर्यत्र ह्रीः श्रीस्तथा मतिः । यतो धर्म्मस्ततः कृष्णो यतः कृष्णस्ततो जयः। इति भीष्मपर्व्वणि ॥

धृतराष्ट्र से संजय ने कहा कि जहां धर्म्म है, वहीं शोभा, कान्ति, लज्जा, लक्ष्मी और बुद्धि संग में रहती हैं; क्योंकि धर्म्म जिधर है, उधरही कृष्ण हैं और जिधर कृष्ण हों, जय उधरही होती है ॥

## धर्म्मोरक्षति धार्म्मिकम् ॥ ६ ॥

जल्पन्ति सूरयः सर्व्वे धर्म्मो रक्षति धार्मिकम् । एतद् ज्ञातव्यमद्यैव किमत्र च भविष्यति ॥ क्रियायोगसारे ॥

सुलोचना की दासी माधव राजा को अपना धर्म्म नष्ट करने को उद्यत देख भयभीत हो मनही मन चिन्ता करने लगी कि पण्डित कहा करते हैं कि धार्म्मिकों की रक्षा धर्म्म ही से होती है, सो आज देखती हूँ कि जन्म से अबलौं मैने अपने जिस धर्म्म की रक्षा की है, सो अब देखना है कि मेरे उस धर्म की रक्षा होती है या नहीं ॥

## धर्म्मस्य सूक्ष्मा गतिः ॥ ७ ॥

यातः क्ष्मामखिलां प्रदाय हरये पातालमूलं वलिः शक्तु-प्रस्थविसर्जनात् सच मुनिः स्वर्गं समारोपितः । आबाल्या-दसती सती सुरपुरीं कुन्ती समारोहयत् हासिता पतिदेवताऽ गमदधो धर्म्मस्य सूक्ष्मा गतिः ॥ हलायुधविरचितम् ॥

वलि राजा पृथ्वी श्रीकृष्ण को दान दे कर रसातल को चले गए और रिचीक मुनि एक मुठी सत्तू दान करके स्वर्ग को चले गये, इस प्रकार वाल्यावस्था ही से असती जो कुन्ती, वह तो स्वर्ग को गई और सती सीताजी अधोगति को प्राप्त हुईं । अतएव धर्म्म की ऐसी सूक्ष्म गति है कि कुछ समझ में नहीं आती ॥

## कालस्य कुटिला गतिः ॥ ८ ॥

अप्सु प्लवन्ति पाषाणा मानुषा घ्नन्ति राक्षसान् । कपयः कर्म्म कुर्व्वन्ति कालस्य कुटिला गतिः ॥ इति रामायणम् ॥

रावण बोला कि जल पर पत्थर तैरे, मनुष्य राक्षसों को नष्ट करें और बन्दर हो कर काम करें, अतएव काल की बड़ी टेढ़ी गति है ॥

## नष्टस्य कान्या गतिः ॥ ९ ॥

भिक्षो मांस निषेवणं प्रकुरुषे किन्तत्र मद्यम्विना मद्यं चास्ति तव प्रियं प्रियमहो वाराङ्गनाभिः सह। वेश्याऽप्यर्थरुचिः कुतस्तव,धनं द्यूतेन चौर्य्येण वा चौर्य्यद्यूतपरिग्रहोऽस्ति भवतो नष्टस्यकान्या गतिः । इति कविवाक्यम् ॥

विक्रमादित्य के सब रत्नो में से एक प्रधान रत्न कवि कालिदास किसी समय में किसी दिग्विजयी को आते देख छद्म वेष से उसकी बिडम्बना करने के लिये उससे मांसभिक्षा करने लगे। यह देख दिग्विजयी ने पूछा क्या तुम भीख मांग के मांस खाते हो? उसने कहा बिना मदिरा के मांस किस काम का? तब वह बोला क्या तुम मदिरा भी पीते हो? उसने कहा पीता तो हूँ, पर वेश्या के साथ। भला वेश्या के लिये धन कहांसे लाते हो? जुए से अथवा चोरी करके। क्या जुए और चोरी का भी तुम्हे व्यसन है? भला नष्ट-चरित्रों की और गति क्या होती है! ॥

## दैवी विचित्रा गतिः ॥ १० ॥

कान्तं वक्ति कपोतिकाकुलतया कान्तान्तकालोऽधुना व्याधोऽधोघृतचापशानितशरः श्येनः परिभ्राम्यति । इत्थं

सत्यहिना स दष्ट इषुणा श्येनोऽपितेनाहतस्तूर्णं तौ तु यमालयं परि गतौ दैवी विचित्रा गतिः ॥ इतिहासः ॥

किसी एक वृक्ष की शाखा पर कबूतर और कबूतरी बैठे हुए थे। उसी समय दैवात् एक बहेलिया नीचे आकर अपनी ताक में बैठा और उसी ठौर शून्य मार्ग में एक बाज उस कबूतर के जोड़े पर मँड़राने लगा। यह देख कबूतरी अपने पति से बोली कि हे नाथ! हम लोगों का अन्त समय उपस्थित है, क्योंकि वृक्ष के नीचे धनुष बाण लिये हम लोगों की ताक में बहेलिया बैठा है और हम लोगों के ऊपर बाज मँड़रा रहा है, अब इसलिये जीने की आशा क्या? इतने ही में अनायास एक विषधर सर्प ने आकर उस बहेलिए की दहिनी कोहनी में डसा। वह तीर धनुष से छूट कर बाज को जा लगी, जिससे उसकी मृत्यु हुई और सर्प के डसने से वृक्ष के नीचे बहेलिया मर गया। इस तरह से कबूतर का जोड़ा अनायास बेमयास बच गया। इससे कहा जाता है कि दैव की गति बड़ी विचित्र है ॥

## पन्था वातेन शुध्यति ॥ ११ ॥

रजसा शुध्यते नारी काष्ठं शुध्यति तक्षणात्। ताम्रमपु-

रयोगेण पन्था वातेन शुध्यति ॥ इति स्मृतिः ॥

रज से स्त्री शुद्ध होती है, लकड़ी छीलने से, तांबा खटाई से और वायु से मार्ग शुद्ध होता है ॥

# द्रव्यं मूल्येन शुध्यति ॥ १२ ॥

फलं तु क्षालनात् शुध्येत् गोमयेन गृहन्तथा ॥ क्षारयोगेन वस्त्रं च द्रव्यं मूल्येन शुध्यति ॥ इति स्मृतिः ॥

फल धोने से, घर गोबर के चौके से, वस्त्र क्षार से और द्रव्य मूल्य से शुद्ध होता है ॥

# मनः पूतं समाचरेत् ॥ १३ ॥

दृष्टिपूतं न्यसेत् पादं वस्त्रपूतं पिबेज्जलम् । सत्यपूतां वदेद्वाचं मनः पूतं समाचरेत् । श्रीमद्भागवतम् ॥

देख के पांव रखना, वस्त्र से छान के जल पीना, सत्य बोलना और जिससे मन की शुद्धि हो, वैसा काम करना ॥

# फलेन परिचीयते ॥ १४ ॥

एकभूरुभयोरेकदलयोरेककाण्डयोः । शालिश्यामाकयोर्भेदः फलेन परिचीयते । इति महाजन-गृहीतवाक्यम् ॥

धान और कम्वा धान [ श्यामा तृण ] ये दोनो एकही

ढोर उगते हैं और रंग रूप भी दोनो के समान ही होते हैं, परन्तु इनकी भिन्नता फल से जानी जाती है ॥

## लाभः परं गोवधः ॥ १५ ॥

शुण्ठीगोक्षुरयोर्विचार्य मनसा कल्काशनं यन्मया उक्त-स्तद्विपरीतकं कृतमहो गोः खोरमात्रं ददौ । नार्थो मूर्खजना-लये न च सुखं नो वा यशो लभ्यते सद्वैद्ये कविभूपतौ हरिहरे लाभः परं गोवधः ॥ इतीतिहासः ॥

एक वैद्य किसी एक मूर्ख की चिकित्सा कर उसके फल में विपरीत फल देख दुःख से बोला कि गोखुरू का काढ़ा मैंने बताया, पर उस मूर्ख ने गोखुरू का अर्थ न समझ गौ के खुर को काट कर काढ़े में दिया। अतएव मूर्ख के यहां धन, सुख, यश और आदर कुछ भी नहीं मिलता। हरे ! हरे !! लाभ यह हुआ कि व्यर्थ की गोहत्या हाथ लगी ॥

### अन्यच्च ।

पञ्चास्यस्य पराभवाय भषको मांसेन गोर्भूयसा द्रव्यश्चै-रपि पायसैः प्रतिदिनं सम्बर्द्धितो यो मया। सोयं सिंहरवाद् गुहान्तरगमद् भीत्याकुलः सम्भ्रमाद्धन्ताशा विलयं गता हत-विधे लाभः परं गोवधः ॥ इतीतिहासः ॥

एक व्याधे ने खेद करके कहा कि मैंने सिंह के शिकार के लिये कुत्ते को गोमांस, दही और खीर खिला के पाला, पर वही कुत्ता माँद के अन्दर से सिंह की गुर्राहट सुन भाग गया, हा विधाता! आशा तो दूर रही, पर गोहत्या पल्ले बंधी।

अन्यच्च।

पारीन्द्रस्य पराभवाय सुरभीमांसेन दुग्धैःपसा पुष्यन्ते किल पीवराः कटुगिरः श्वानः प्रयत्नादमी। नत्वेतन्मदमत्तवारण-चमूविद्रावणः केशरी जेतव्यो भवता किरातनृपते लाभः परं गोवधः॥ इतीतिहासः॥

किसी एक मनुष्य ने व्याधाओं के राजा से कहा कि सिंह के मारने के लिये तुम जो कुत्ता पाल रहे हो, सो कुत्ता सिंह को न मार सकेगा, फिर व्यर्थ गोहत्या क्यों कर रहे हो॥

## बकः परमधार्म्मिकः॥ १६॥

शनैः शनैः क्षिपेत् पादौ प्राणिनाम्वधशङ्कया। पश्य लक्ष्मण पंपायां बकः परमधार्म्मिकः॥ इति रामायणान्तरम्॥

रामचन्द्र ने लक्ष्मण से कहा कि देखो लक्ष्मण! जीवहिंसा के भय से बगला कैसे धीरे धीरे पांव रख रहा है, मानो यह परम धार्म्मिक है॥

अस्योत्तरम् ।

राघव त्वं न जानासि बकः परमदारुणः । निर्जीवभक्षको गृध्रः सजीवभक्षको बकः ॥

हे रामचन्द्र ! तुम नहीं जानते कि बक बड़ा दारुण पक्षी है, क्योंकि गिद्ध मुर्दे को खाता है, परन्तु बक जीतेही को खालेता है ॥

# अद्य युद्धं त्वया मया ॥ १७ ॥

सप्त सिंहा जिताः पूर्वं पञ्च व्याघ्रास्त्रयो गजाः । पश्यन्तु देवताः सर्वा अद्य युद्धं त्वया मया ॥ इतीतिहासः ॥

एक दिन किसी जङ्गल में एक बहुत बड़ा वाराह (सूकर) घूम रहा था, उसी समय वहीं एक सिंह को आते देख वह मनही मन विचारने लगा कि अब तो मृत्यु का समय उपस्थित है, परन्तु नीति में कहा है कि विपद देख घबराना न चाहिए बरन चित्त में ढाढ़स रख उससे निकलने का उपाय सोचना चाहिए । ऐसा जी में ठान वह गुर्रा कर सिंह से बोला कि मैंने सात सिंह, पांच घाघ, और तीन हाथियों को मार विजय पाई है, सो आज मेरा तुम्हारा युद्ध देवता लोग देखेंगे ॥

अस्योत्तरः ।

गच्छ सूकर भद्रन्ते वद सिंहो मया जितः । पश्यन्ति

देवताः सर्व्वाः सिंहशूकरयोर्बलम् ॥

सिंह ने शूकर का अभिप्राय समझ कर हंस के उत्तर दिया कि हे शूकर ! तुम भले ही अपने घर चले जाओ और सबसे कहते फिरो कि मैंने सिंह को जीत लीया है। इस बात को देवता भली भांति जानते हैं कि सिंह और शूकर में कितना अंतर है ॥

## तन्नष्टं यन्न दीयते ॥ १८ ॥

द्विजाय दत्ता पादुश्च शतवर्षीयजर्ज्जरा । तत् फलादश्व-लाभो मे तन्नष्टं यन्न दीयते ॥ इति कालिदासवाक्यम् ॥

कवि कालिदास किसी एक स्थान पर जाते थे, उस मार्ग में लगभग एक कोस तक बालू थी। उसी स्थान पर किसी बूढ़े ब्राह्मण को धूप से तपी हुई बालू पर तड़पते देख उन्होंने उसे अपना जूता दे दिया। जब राजा विक्रमादित्य की सभा में वे लौट कर आए, तब राजा कालिदास से पूछने लगे कि आप किस तरह ऐसी जलती हुई बालुका से उतीर्ण हुए ? तब कालिदास ने यह ऊपर वाले श्लोक के द्वारा उत्तर दिया कि पुराना टूटा जूता किसी ब्राह्मण को मैंने देदिया था, उसी के फलसे अकस्मात् एक घोड़ा मुझे प्राप्त हुआ, उसीके द्वारा मैं उत्तीर्ण हुआ हूं । अर्थात् जो नहीं दिया जाता, वह नष्ट

होता है ॥

## पञ्चानामपि यो भर्त्ता नासौ प्राकृतमानुषः ॥ १९ ॥

न भीम स्पृश पादेन एकादशचमुपतिम् । पञ्चानामपि यो भर्त्ता नासौ प्राकृतमानुषः ॥ इतिमहाभारते ॥

धर्म्मपुत्र युधिष्ठिर भीम से बोले कि हे भीम ! ग्यारह अक्षौहिणी के पति दुर्य्योधन के मस्तक पर पांव न लगावो, क्यों कि जो मनुष्य पांच जनों का भरण पोषण करता है, वह सामान्य मनुष्य नहीं है ॥

## अर्थेन सर्व्वे वशाः ॥ २० ॥

माता निन्दति नाभिनन्दति पिता भ्राता न सम्भाषते भृत्यः कुप्यति नानुगच्छति सुतः कान्ता च नालिङ्गते । अर्थप्रार्थन-शंकया न कुरुते ऽप्यालापमात्रं सुहृत् तस्मादर्थमुपार्ज्जय शृणु सखे चार्थेन सर्व्वे वशाः । इति महाजनगृहीतवाक्यम् ॥

धनहीन मनुष्यों की माता निन्दा करती है, पिता भी प्रसन्न नहीं रहता, भ्राता मुहं से नहीं बोलते, सेवक क्रोध करता है, अपना पुत्र कहा नहीं मानता, कान्ता ( स्त्री )

प्रेम नहीं करती और इस डर से मित्र भी भेंट नहीं करते कि कदाचित् हमसे यह रुपया कर्जा न मांगे। इसलिये हे सखा! रुपया कमाओ, क्योंकि धन से सब लोग वश में होते हैं।

## सर्व्वै रुपायैः फलमेव साध्यम् २१ ॥

त्रिविक्रमोऽभूदपि वामनोऽसौ स शूकरश्चेति स वै नृसिंहः ॥ नीचैरनीचैरतिनीचनीचैः सर्व्वैरुपायैः फलमेवसाध्यम् ॥ इति महाजनगृहीतवाक्यम् ॥

त्रिविक्रम अर्थात स्वर्ग मर्त्य पाताल के जीतने वास्ते विष्णु समय पर बहुत छोटे रूप अर्थात बौने हुए, वेही शूकर अर्थात वाराह रूप हुए, फिर उन्हीं ने नृसिंह अर्थात् पशु का रूप धारण किया था। अर्थात नीच से भी नीच, अति नीच जब जैसा मौका हो, अपने काम के साधन के लिये तब वैसाही रूप धारण करना पड़ता है॥

## स्वकार्य्यमुद्धरेत् प्राज्ञः कार्यध्वंसे च मूर्खता ॥ २२ ॥

अपमानं पुरस्कृत्य मानं कृत्वा तु पृष्ठके। स्वकार्यमुद्धरेत् प्राज्ञः कार्यध्वंसे च मूर्खता ॥ ( इति नीतिशास्त्रम् )

अपमान को पुरस्कार मान और मान पर ध्यान न दे बुद्धिमान लोग अपना काम निकाल लेते हैं, क्योंकि काम का बिगाड़ना ही मूर्खता है ॥

## अर्थस्य पुरुषो दासः ॥ २३ ॥

अर्थस्य पुरुषो दासो दासस्त्वर्थो न कस्यचित्। इति सत्यं महाराज बद्धश्चार्थेन कौरवैः ॥ इति भीष्मपर्वणि ॥

भीष्म द्रोण आदि ने युधिष्ठिर से कहा कि मनुष्य अर्थ का दास है, परन्तु अर्थ किसी का दास नहीं है, इसलिये हे महराज! हम लोग अर्थ ही के कारण दुर्योधन के निकटबद्ध होरहे हैं ॥

## दोषा वाच्या गुरोरपि ॥ २४ ॥

शत्रोरपि गुणा वाच्या दोषा वाच्या गुरोरपि। सर्व्वदा सर्व्वयत्नेन पुत्रे शिष्ये हितं वदेत्। इतिविराटपर्व्वणि ॥

जो शत्रु में कोई गुण हो तो उसे भी स्पष्ट कह देना और अपने गुरु में यदि कोई दोष हो तो उसे भी कह देना चाहिए॥ अर्थात् सर्वदा सम्यक प्रकार से यत्नपूर्वक पुत्र को और शिष्य को हित वाक्य कहते रहना ॥

## दारिद्रदोषो गुणराशिनाशी ॥२५॥

अङ्कस्य दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दोरिति यो वभाषे। न्यूनं न दृष्टं कविनापि तेन दारिद्र्यदोषो गुणराशिनाशी। इति कविवाक्यम्॥

राजा विक्रमादित्य की सभा के नवरत्नों में से घटकर्पर नाम के कवि ने कहा था कि चन्द्रमा में जो कलंक है, वह उसके अनेक गुणों में छिप जाता है। अर्थात वह दोष प्रबल नहीं होता। क्योंकि जहां बडे बडे गुण हैं, वहां छोटा कोई ऐब छिप जाता है॥

## कीर्त्तिर्यस्य स जीवति ॥ २६ ॥

चलच्चित्तं चलद्वित्तं चलज्जीवनयौवने। चलाचलमिदं सर्व्वं कीर्त्तिर्यस्य स जीवति॥

सब धन और जीवन चंचल है, परन्तु कीर्त्ति अचल है; अर्थात कीर्त्तिमान मनुष्य के मरने पर भी उसकी कीर्ति जीती रहती है॥

अन्यच्च।

स जीवति यशो यस्य कीर्त्तिर्यस्य स जीवति। अयशो

ऽकीर्तिसंयुक्तो जीवन्नपि मृतोपमः ॥ इति महाजनगृहीत-वाक्यम् ॥

जिसका यश है और जिसकी कीर्त्ति है, वह मरने पर भी जीता है, परन्तु जिसका अजस और अकीर्ति होती है, वह जीता भी मरे के बराबर है ॥

## वृद्धस्य वचनं ग्राह्यम् ॥२६॥

वृद्धस्य वचनं ग्राह्यं आपत्काले ह्युपस्थिते । सर्व्वत्रैव विचारेण आहारे न च मैथुने ॥

विपत्ति पड़ने पर बड़ों की बात माननी चाहिये, परन्तु आहार और मैथुन में नहीं ॥

## अव्यवस्थितचित्तस्य प्रसादोऽपि भयङ्करः ॥ २७ ॥

क्वचिद्रुष्टः क्वचित्तुष्टो रुष्टस्तुष्टः क्षणे क्षणे । अव्यवस्थित-चित्तस्य प्रसादोऽपि भयंकरः ॥ इति हितोपदेशः ॥

जो कभी रुष्ट होता है और कभी प्रसन्न रहता है, ऐसे अव्यवस्थित चित्त वाले मनुष्य की प्रसन्नता भी भयानक है ॥

## देशाय तस्मै नमः ॥ २८ ॥

छेद्यंचन्दनचूतचम्पकवनं रक्षा च साकोटके हिंसा हंस-मयूरकोकिलगणे काके च बव्हादरः । मातङ्गे तुरगे खरे च समता कर्पूरकार्पासयोरेषा यत्र विचारणा गुणिगणे देशाय तस्मै नमः । इति कविवाक्यम् ॥

जिस देश में चन्दन आम और चंपा के वृक्षों को काट डालते हैं, और सेहुड़ आदि वृक्षों की रक्षा करते हैं, हंस मयूर कोकिलों की हिंसा कर कौवों का आदर करते हैं, ऐसेही हाथी घोड़े इत्यादिकों की तुलना गधेसे करते हैं और कपूर और कपास की बरोबरी समझते हैं, ऐसा विचार जिस देश में हो, हे गुणीजन ! ऐसे देश को दूरही से नमस्कार है ॥

## तथापि सिंहः पशुरेव नान्यः॥२९॥

भिनत्ति नित्यं करिराजकुम्भं बिभर्त्ति वेगं पवनातिरेकं करोति वासं गिरिराजशृङ्गे तथापि सिंहः पशुरेव नान्यः ॥ इति कविवाक्यम् ॥

बड़े बड़े मदमाते मतङ्गों के कुम्भस्थल को काट डालता है, जिसकी चाल तेज वायु की समता करती है, जो अति

उतङ्ग गिरिशृङ्गों पर निवास करता है, वह सिंह सिवाय पशु के और कुछ भी नहीं हैं ॥

## तथापि काको न च राजहंसः ॥ ३० ॥

काकस्य चञ्चुर्यदि स्वर्णयुक्ता माणिक्ययुक्तौ चरणौ च तस्य ॥ एकैकपक्षे गजराजमुक्ता तथापि काको न च राजहंसः ॥ इति कविवाक्यम् ॥

किसी कवि ने कहा है कि यदि कौवे की चोंच पर सोने का पत्तर मढ़ दियाजाय, उसकी चोंच पर जड़ाव का काम कर दिया जाय और प्रत्येक परो में गजमोती पिरो दिया जाय, तौभी कौवा राजहंस नहीं हो सकता ॥

## भेको मकमकायते ॥ ३१ ॥

दिव्यं चूतफलं प्राप्य न गर्व्वं याति कोकिलः । पीत्वा कर्दमपानीयं भेको मकमकायते ॥ इति कविवाक्यम् ॥

किसी कवि ने कहा है कि दिव्य आम खाके भी कोयल को इतना अभिमान नहीं होता, जैसा गदला पानी पीके मेंडुका टर्राता है ॥

## दर्दुरा यत्र वक्तारस्तत्र मौनं हि शोभनम् ॥ ३२ ॥

भद्रं कृतं कृतं मौनं कोकिलैर्जलदागने । दर्दुरा यत्र वक्तारस्तत्र मौनं हि शोभनम् ॥ इति कविवाक्यम् ॥

किसी कवि ने कहा है कि कोयल ने बहुत अच्छा किया कि वर्षा रितु के आते ही मौन धारण करलिया, क्योंकि जहां मेंडुका बोल रहा है, वहां कोयल का चुप रहना ही अच्छा है ।

## काचः काचो मणिर्मणिः ॥ ३३ ॥

मणिर्लुंठति पादेन काचः शिरसि धार्य्यते ॥ यथैवास्तु तथैवास्तु काचः काचो मणिर्मणिः ॥ इति हितोपदेशः ॥

जो मणि पांव पर पड़ी हो और कांच सिर पर धरा हो तौभी मणी मणीही है और काच काचही है ॥

## काकः काकः पिकः पिकः ॥ ३४ ॥

काकः कृष्णः पिकः कृष्णस्तवभेदः पिककाकयोः । आयाता मधुयामिन्यः काकः काकः पिकः पिकः ॥ इति कविवाक्यम् ॥

किसी कवि ने कहा है कि कौवा भी काला और कोयल भी

काली, परन्तु बसन्त की रात आतेही दोनो में बिभिन्नता हो जाती है ॥

## रामरावणयोर्युद्धं रामरावणयो-रिव ॥ ३५ ॥

गगनं गगनाकारं सागरः सागरोपमः । रामरावणयोर्युद्धं रामरावणयोरिव ॥ बाल्मीकिरामायणम् ॥

जैसे समुद्र की उपमा समुद्र में है और गगन की उपमा गगन में है, वैसे ही राम और रावण के युद्ध की उपमा उन्ही के युद्ध में है ॥

अन्यच्च ।

सप्ताहानि दिवारात्रौ वादिताः सप्तघण्टिकाः । राम-रावणयोर्युद्धं रामरावणयोरिव । इति रामायणम् ॥

करोड़ राक्षस के बिनाश होने पर एक वेर घण्टा बजताथा, ऐसे सात घण्टा सात दिन लों दिनरात राम रावण के युद्ध में बजता रहा, इसलिये राम और रावण के युद्ध की उपमा उन्ही के युद्ध में है ॥

## स रामः किं करिष्यति ॥ ३६ ॥

लंका दग्धा बनं भग्नं लङ्घितश्च महोदधिः । यत् कृतं राम-

दूतेन स रामः किं करिष्यति ॥ इति रामायणम् ॥

हनुमान का अद्भुत चरित्र देख के सब राक्षस चकित हो कहने लगे कि राम के एक दूत ने आकर लंका को दग्ध किया, वन को उजाड़ा तथा समुद्र को लांघा तो वे रामचन्द्र क्या करेंगे ॥

## असह्यं ज्ञातिदुर्वाक्यम् ॥ ३७ ॥

वरं रामशरः सह्यो न च वैभीषणं वचः । असह्यं ज्ञातिदुर्वाक्यं मेघान्तरितरौद्रवत् ॥ इति रामायणम् ॥

रावण बोला कि रामचन्द्र के बाण तो सहे जाते हैं परन्तु विभीषण के दुर्वाक्य नहीं सहे जाते, क्योंकि जात के दुर्वाक्य बदली में छिपी हुई धूप की तरह होते हैं ॥

## भृत्याभावे भवति मरणं किन्तु सम्भावितानाम् ॥ ३८ ॥

साधुस्त्रीणां दयितविरहे मानिनां मानभङ्गे सल्लोकानामपि जनरवे निग्रहे पंडितानाम् ॥ अन्योद्रेके कुटिलमनसो निर्गुणानां विदेशे भृत्याभावेभवति मरणं किन्तु सम्भावितानाम् ॥ इति कविवाक्यम् ॥

पतिव्रता स्त्रियों की पति के विरह में, मानी लोगों की मान भङ्ग में, सत्लोकों की दूसरों की बदनामी होने से, जिसमें कोई गुण नहीं है, उसकी परदेश जाने में और धनवानों की विदेश में बिना नौकर के मृत्यु होती है ॥

## गतस्य शोचना नास्ति ॥ ३९ ॥

कृतस्य करणं नास्ति मृतस्य मरणं यथा । गतस्य शोचना नास्ति इति वेदविदाम्मतम् । इति महाजनगृहीतवाक्यम् ॥

जैसे मुर्दों का पुनः मरण नहीं होता, वैसेही जो काम हो चुकाहै,वह फिर से लौट नहीं सक्ता,इसलिये जो बात गत हो गई है, उसके लिये सोचना व्यर्थ है,यह पंडितों का मत है ॥

## नियतिः केन वाध्यते ॥ ४० ॥

मातुलो यस्य गोविन्दः पिता यस्य धनञ्जयः । सोऽभिमन्यू रणे शेते नियतिः केन वाध्यते । इति महाभारतम् ॥

जिसके मामा गोविन्द और पिता अर्जुन, ऐसे अभिमन्यु युद्धभूमि में लोट गये, अतएव बदे को कौन टाल सकता है ।

## प्राप्तकालो न जीवति ॥ ४१ ॥

नाकाले म्रियते कश्चित् विद्धः शरशतैरपि । छिन्नः कुशा-

श्रमात्रेण प्राप्तकालो न जीवति । इति हितोपदेशः ॥

सैंकड़ो तीरों के बिधने से अकाल में किसीकी मृत्यु नहीं होती, परन्तु जब मृत्यु का समय आजाता है तब एक कुशा के गड़ने से भी मृत्यु हो जाती है ॥

# आयुर्म्मर्माणि रक्षति ॥ ४२ ॥

निमग्नस्य पयोराशौ पर्व्वतात् पतितस्य च । तक्षकेणापि दष्टस्य आयुर्मर्माणि रक्षति । इति हितोपदेशः ।

अथाह जल में डूबने से,पर्व्वत से गिरने से,अथवा तक्षक के डसने से भी मृत्यु नहीं होती, यदि उसकी आयु है ॥

# भाग्यं फलति सर्व्वत्र न विद्या न च पौरुषम् ॥ ४३ ॥

समुद्रमन्थने लेभे हरिर्लक्ष्मीं हरो विषम् । भाग्यं फलति सर्व्वत्र न विद्या न च पौरुषम् ॥

किसी कवि ने कहा है कि समुद्र मथने पर विष्णु को तो लक्ष्मी मिलीं,परन्तु महादेव को हलाहल बिष मिला; अतएव भाग्य ही सब ठौर फलीभूत होता है,न विद्या से कुछ होताहै और न कुछ पौरुष से ही होताहै,क्योंकि हरि और हर दोनो

समान होने पर भी दोनो को ऐकही ठौर में भिन्नभिन्न फलमिला।

## कपालः कपालः कपालमूलः ॥ ४४ ॥

किम्वा स्वयम्भुः शिवशक्तिविष्णुः कपालदुःखं न करोति दूरं । अतः परो जीव स्वकर्म्मभोगः कपालः कपालः कपाल मूलः ॥ इति महाजनगृहीतवाक्यम् ॥

स्वयम्भू शिव किंवा शक्ति अथवा विष्णु इनमें से कोई भी कपाल के दुःखको टाल नहीं सकते अतएव जितने जीव हैं वे सब निज कर्म्म के अनुसार फल भोगते हैं इस लिये सब की जड़ कपाल ही है ॥

## अवश्यमेव भोक्तव्यंकृतं कर्म्म शुभाशुभम् ॥ ४५ ॥

मा भुक्तं क्षीयते कर्म्म कल्पकोटिशतैरपि । अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म्म शुभाशुभम् ॥ इति भारतम् ॥

सौ करोड़ कल्पान्तर बीतने परभी शुभ वा अशुभ कर्म्म का क्षय नहीं होता, किये को भोगनाही पड़ता है ॥

## यद्विधेर्मनसि स्थितम् ॥ ४६ ॥

श्रमात्रेण प्राप्तकालो न जीवति । इति हितोपदेशः ॥

सैंकड़ो तीरों के बिधने से अकाल में किसीकी मृत्यु नहीं होती, परन्तु जब मृत्यु का समय आजाता है तब एक कुशा के गड़ने से भी मृत्यु हो जाती है ॥

## आयुर्मर्म्माणि रक्षति ॥ ४२ ॥

निमग्नस्य पयोराशौ पर्व्वतात् पतितस्य च । तक्षकेणापि दष्टस्य आयुर्मर्माणि रक्षति । इति हितोपदेशः ।

अथाह जल में डूबने से,पर्व्वत से गिरने से,अथवा तक्षक के डसने से भी मृत्यु नहीं होती, यदि उसकी आयु है ॥

## भाग्यं फलति सर्व्वत्र न विद्या न च पौरुषम् ॥ ४३ ॥

समुद्रमन्थने लेभे हरिर्लक्ष्मीं हरो विषम् । भाग्यं फलति सर्व्वत्र न विद्या न च पौरुषम् ॥

किसी कवि ने कहा है कि समुद्र मथने पर विष्णु को तो लक्ष्मी मिलीं,परन्तु महादेव को हलाहल बिष मिला; अतएव भाग्य ही सब ठौर फलीभूत होता है,न बिद्या से कुछ होता है और न कुछ पौरुष से ही होताहै,क्योंकि हरि और हर दोनो

समान होने पर भी दोनो को ऐकही ठौर में भिन्नभिन्न फलमिला।

## कपालः कपालः कपालमूलः ॥ ४४ ॥

किम्वा स्वयम्भुः शिवशक्तिविष्णुः कपालदुःखं न करोति दूरं। अतः परो जीव स्वकर्म्मभोगः कपालः कपालः कपाल मूलः ॥ इति महाजनगृहीतवाक्यम् ॥

स्वयम्भू शिव किंवा शक्ति अथवा विष्णु इनमें से कोई भी कपाल के दुःखको टाल नहीं सकते अतएव जितने जीव हैं वे सब निज कर्म्म के अनुसार फल भोगते हैं इस लिये सब की जड़ कपाल ही है ॥

## अवश्यमेव भोक्तव्यंकृतं कर्म्म शुभाशुभम् ॥ ४५ ॥

मा भुक्तं क्षीयते कर्म्म कल्पकोटिशतैरपि । अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म्म शुभाशुभम् ॥ इति भारतम् ॥

सौ करोड़ कल्पान्तर वीतने परभी शुभ वा अशुभ कर्म्म का क्षय नहीं होता, किये को भोगनाही पड़ता है ॥

## यद्विधेर्मनसि स्थितम् ॥ ४६ ॥

करोतु नाम नीतिज्ञो व्यवसायमितस्ततः। फलं पुनस्त देवास्य यद्विधेर्मनसिस्थितम्। इति हितोपदेशः।

नीतिवान लोग चाहे जो व्यवसाय करें परन्तु उसका फल वही होता है जो विधाता के मन में होता है॥

# आत्मवन्मन्यते जगत् ॥ ४७ ॥

आश्रमन्त्वा गता वेश्या ऋष्यशृङ्ग ऋषेः सुतः। तपस्विनस्तुता मे ने आत्मवन्मन्यते जगत्। इति वाशिष्ठ रामायणम्।

बिभाण्डक मुनि के पुत्र ऋषिशृङ्ग मुनी को छलसे लाने के लिये लोमपादराजा की प्रेरित बेश्याएं गयी थीं। ऋष्यशृङ्ग ने सिवाय अपने पिता के और किसी मनुष्य को कभी नहीं देखाथा इसीसे उन्हे स्त्री और पुरुष काज्ञान न था अतएव उन बेश्याओं के शरीर का सौन्दर्य्य और रूप लावण्य देख उन्हो ने उन्हें परम तपस्वी जाना था। बशिष्ठ देव ने रामायण में कहा है कि आश्रम में आई हुई बेश्याओं को बिभाण्डक ऋषी के पुत्र ऋष्यशृङ्ग मुनी ने तपस्वी जाना था अतएव संसार में जो जैसा होता है वह दूसरों को भी वैसा ही जानता है।

# शनैः पर्वतलङ्घनम् ॥ ४८ ॥

अटवेन महारण्ये सुपन्था जायते शनैः । वेदाभ्यासात्तथा ज्ञानं शनैः पर्व्वत लङ्घनम् ॥ इति ब्रम्हाण्ड पुराणम् ॥

शतानीक मुनीने अपने पुत्र को ज्ञानोपदेश करते हुए कहा कि जैसे महारण्य के बीच में भ्रमण करते करते क्रम से सुन्दर पथ मिल जाता है वैसे ही बार बार वेद के अभ्ययन करते रहनेसे ज्ञान का उदय हो जाता है क्योंकि अलङ्घनीय पर्व्वत को भी धीरे धीरे उलङ्घन कर सकते हैं ॥४८॥

## अन्यच्च ।

शनैः पन्था शनैःकन्था शनैःपर्व्वत लङ्घनम् । शनैः कर्म्मंच धर्म्मश्च एते पञ्च शनैः शनैः । इति महाजन गृहीत वाक्यम् ॥

क्रम से पन्था एवं क्रम से कन्था (कथरी) बनती है तथा क्रम से पर्व्वत लांघा जाता है एवं क्रम ही से कर्म्म और धर्म्म होता है। यह पांचो बातें क्रम क्रम से ही होती हैं।

# क्रोधोऽपि देवस्य वरेण तुल्यः।४९।

जे जे हता चक्रधरेण दैत्यास्त्रैलोक्य नाथेन जनार्द्दनेन । ते ते गतास्तन्निलयं सुराणां क्रोधोऽपि देवस्य वरेण तुल्यः ॥ इति पाण्डव गीता ।

त्रिलोकी नाथ जनार्दन के श्रीहाथ चक्र द्वारा जो जो दैत्य मारेगये वे देवताओं के वासस्थान अर्थात स्वर्गको गए इसी से कहा है कि देवताओं का क्रोध वरके तुल्य होता है।

## स्त्रियाश्चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं देवो न जानन्ति कुतो मनुष्या:५०

गुरोश्च पुत्रे वरमाल्यदाने दिष्ट्या मदत्तं खलु कार्त्तिकाय। स्त्रियाश्चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं देवो न जानन्ति कुतो मनुष्याः। इति तिहासः।

एक राज कुमारी किसी पंडितसे विद्योपार्जन करती थी। एक रोज पंडित जी को कहीं से निमंत्रण आया तो वह अपने पुत्रको राजकुमारीके पढ़ाने का भार सौंप आप नेवते में चले गए। गुरुजी का पुत्र नियमानुसार राजकुमारी को पढ़ाने के लिये जाने लगा। एक दिन जब राजकुमारी पढ़चुकी तब गुरुपुत्रने उससे कुछ लिखवाना आरंभ किया। लिखते लिखते राजकुमारीके हाथसे कलम गिर पड़ी तब उसे उठा देने के लिये उसने गुरु पुत्रसे अनुरोध किया जब गुरुपुत्रने लेखनी उठा कर देदी तब राजकुमारी ने

संतुष्ट होकर उसका उपकार स्वीकार किया इसपर गुरुपुत्रने कहा कि यदि इस उपकार को आप उपकार समझती हैं तो क्या मैं किसी प्रत्युपकार की आपसे वांछाक करसकता हूं।

यह सुन राजकुमारीने मन में विचारा कि ब्राम्हण लोभी होते हैं, सिवाय द्रव्यके और क्या मांगेंगे। यह विचार उसने गुरुपुत्र से कहा कि मैं इस बातकी प्रतिज्ञा करती हूँ कि जो तुम चाहोगे वही तुम्हें दूँगी। तब गुरुपुत्रने वयाधर्मके अनुसार कामवशहो राजकुमारी से धन न मांग विवाह करनेकी प्रार्थना की, यह सुनतेही राजकुमारी तो सन्न हो गई परन्तु फिर इस विचार से स्वीकार करलिया कि यदि वह गुरुपुत्र की प्रार्थना अस्वीकार करतीहै तो बड़ा भारी अधर्म होगा क्योंकि वह पहिले ही प्रतिज्ञा कर चुकी थी कि वह जो मांगे सो दूंगी। और कहने लगी कि भाग्य के लिखेको कोई भी नहीं मिटा सकता, यद्यपि तुम्हारे साथ विवाह होनेसे मैं सधवा होकर भी विधवा ही रहूँगी यही नहीं वरन राज भोग छोड़ कर्म भोग को भोगना पड़ेगा। परन्तु मैंने सत्य प्रतिज्ञा की है इस कारण तुम आज रातको गांव के बाहर जो एक शिवजीका मंदिर है उसी में जाकर मेरी प्रतीक्षा करना, मैं

अंधेरा हो जाने पर चोरी से वहां आऊंगी और वहीं पर तुम्हे जैमाल पहिरा दूँगी। यह सुन गुरुपुत्र मारे आनन्द के उन्मत्त सा होगया और आशापूर्ण होनेके लिये अंधकारकी प्रतीक्षा करने लगा। उसी दिन संध्या होते होते ब्राम्हण निमन्त्रण से लौट कर घरपर आपहुंचे यह देख पुत्रको बडा दुःख हुआ और उसे निश्चय होगया कि अब उस की आशा पूर्ण न होगी।

इधर कार्त्तिक नाम के पंडितजी के नौकर ने राजकुमारी के जैमालकी सब बातें सुनलीथीं, उसने सोचा कि किसी प्रकार गुरु पुत्रको धोखा देकर आप स्वयं मंदिर में जा जैमाल लेलें, इसी से उसने अपने स्वामी से सब हाल कहदिया। सुनतेही पंडितजी के तो होश उड़गए। तब उस नौकरने कहा प्रभू आपक्यों इतनी चिंताकरते हैं, मैं एक सहज उपाय आपको बताता हूँ जिससे कि वह विवाह कभी न होसके यह कह उसने कहाकि यह सबचीजें जो आप लाए हैं उन्हे कोठड़ी में रखने के लिये अपने पुत्रसे कहिये और जब वह लेकर भीतर घुसे तब आप बाहर से उसका द्वार बंद करदें,ऐसा करने से वह उस समय रात को मंदिर में न जासकेगा और न राज कुमारी जैमाल पहिना सकेगी। फिर समय

निकल जाने से वहभी अपने पापसे मुक्त हो जायगी और कष्ट भी न होगा। तब ब्राह्मण ने पुत्र को बुलाकर उनचीजों को भीतर धर देने के लिये कहा और जब वह कोठरी में गया तो बाहर से द्वार बंद कर ताला लगा दिया। गुरु पुत्रको तो इधर बंद कीया और वह सेवक आप रातको उसी शिव मंदिर में चला गया। थोड़ी देर बाद राज कन्या नख सिख से आ-भूषण पहिरे हुई मंदिर में आई, उसके आतेही में मंदिर उजेला सा होगया और राज कुमारी ने शिवजी की प्रदक्षिणा कर के पूछा क्या गुरुजी के पुत्र आगए हैं, इस पर कार्तिक ने हूं कह कर उत्तर दिया तब राज कुमारी ने जैमाल उसके गले में पहिना दिया। उसके बाद राज कुमारी को मालूम होगया कि वह गुरु पुत्र नहीं था वरन कार्तिक नौकर, तबतो राज कुमारी को और भी दुःख हुआ उसी समय उसने पूर्वोक्त श्लोक कहा; कि गुरु पुत्र को जैमाल डालने के लिये मैंने स्वीकारभी किया था परंतु भाग्य दोष से कार्तिक भृत्य के गले में पड़ी, इसी से कहा है कि स्त्री का चरित्र और पुरुष का भाग्य इसे देवता तो जानते ही नहीं तो मनुष्य क्या जानेंगे? फलितार्थ यह कि वह कार्तिक भृत्य सामान्य आदमी नथा, वह राजा विक्रमादित्य थे, जो दैवके निर्बन्ध रक्षा के लिये

ब्राम्हण के यहां वेष बदल के रहे थे। जब राज कुमारी को यह भेद मालूम हुआतो वह बहुत ही प्रसन्न हुई।

## यस्मिन् देशे यदाचार पारम्पर्य्यं विधीयते ॥ ५१ ॥

नदोषो मगधे मद्ये अभयोनौ कलिङ्गके। ओंड्रे भ्रातृवधू भोगे गौड़े मत्सस्य भोजने। दुहितुर्मातुलस्यापि विवाहे द्राविडे तथा। यस्मिन् देशे यदा चार पारम्पर्य्य विधियते॥ इति महाजन गृहीत वाक्यम्।

जैसे मगध देश में मदिरा पान करने से निन्दा नहीं होती, उड़िस्सा प्रदेश में गोती की स्त्री के साथ गमन करने से निन्दा नही है, गौड़ देश में मछली खाने की निन्दा नहीं है, द्राविड़ देश में मामा की लड़की से विवाह करनेमें निन्दा नहीं है, इससे जिस देश की जैसी चाल परम्परा से चली आई है उसके अनुसार कार्य करने से निन्दा नहीं होती।

## आतुरे नियमो नास्ति ॥५२॥

आतुरे नियमो नास्ति वाले वृद्धे तथैवच। कुला चार रते चैव एष धर्म्मः सनातनः॥ इतिस्मृतिः।

आतुरावस्था के लिये कई नियम नहीं है। बालक, और अस्सीवर्ष के ऊपर वृद्ध, तथा कुत्र्याचार में रत पुरुष के वासते भी किसी प्रकार का नियम नहीं है।

# जिघांसन्तं जिघांसीयात् ॥५३॥

आततायिनमायान्तमपि वेदान्तगं रणे। जिघांसन्तं जिघांसीयान्नतेन ब्रम्हहा भवेत् ॥ इति भागवतम्।

लड़ाईके मैदान में जो कोई धोखे वाज (आततायी) आजाय और चाहे वह कैसाहो वेदादि शास्त्रोंका पंडित क्योंनहो उसेमार डालने से ब्रम्ह हत्या का पाप नहीं होता।

# सफरी फरफरायते ॥ ५४ ॥

अगाधजलसंचारी विकारी नच रोहितः। गण्डूष जल मात्रेण सफरी फरफरायते। इति कविवाक्यम्।

किसी कवी ने कहा है कि अगाध जल में विचरण करने वाली रोहू मछली कितनी धीरता से घूमती फिरती है परन्तु छोटी मछली हाथ ही भर पानी पाने पर मारे घमंड के उसी में उछल उछल कर चलने लगती है।

## पश्चात् झन झनायते ॥ ५५ ॥

सुवर्ण सदृशं पुष्पं फले रत्नं भविष्यति। आशया सेविता वृक्षःपश्चात् झन झनायते। इति कविवाक्यम्।

किसी कवी ने अपनी आशा से निराश हो खेद के साथ कहा कि जिस वृक्ष के फूल को सोने के समान चमकता देख यह समझा था कि उसमें अवश्य कोई रत्न फलगा और इसी आशा से उसकी सेवा की थी परंतु अंत में उस वृक्ष के फल में केवल झनझनाहट शब्द ही निकला। अर्थात् कुछ भी नमिला।

## सेवकान्नं पुरातनम् ॥ ५६ ॥

नवं वस्त्रं नवं छत्रं नव्या स्त्री नूतनं गृहे। सर्व्वत्र नूतनं शस्तं सेवकान्नं पुरातनम्। इति महाजनगृहीतवाक्यम्।

नया वस्त्र, नया छाता, नई स्त्री और नया घर यह सब नयेही आनन्द को देते हैं परन्तु नौकर और अन्न पुराना ही अच्छा होता है।

## शठे शाठ्यं समाचरेत् ॥ ५७ ॥

सारल्यं सरले कुर्य्यात् शठे शाठ्यं समाचरेत् । वणिक् पुत्र मकार्षीच्च ब्राह्मणो वानरं यथा । इतीतिहासः ।

एक सरल अन्तःकरण ब्राम्हणने एक व्यापारी से मित्रता कर ली थी; कुछ दिनो बाद ईश्वरकी प्रेरणा से उस ब्राह्मण को इच्छा तीर्थ दर्शनादि की हुई तो उसने अपने पास जो थोड़े से रुपै थे उन्हे एक कपड़े की थैली में बांध कर अपने विश्वासी मित्र व्यापारी के पास जमा कर दी और आप तीर्थ करने चला गया । ब्राह्मण के चले जाने बाद उस वाणिक् ने उस थैली को खोल उसमें से सब रुपए निकाल लिये और उनके बदले उसमें तांबे के पैसे बांध कर रख दिए । कुछ दिनों बाद वह ब्राह्मण यात्रा से लौट आया और अपने मित्र के पास जा कर उससे अपनी धरोहर मांगी तब उस बाणिक् ने वही थैली उस ब्राह्मण को दे दी । जब ब्राह्मण ने उसे खोल कर देखा तो उसमें रुपयों की जगह पैसे निकले, यह देख ब्राह्मण ने अपने मित्र से नम्रता से कहा कि हे मित्र ! आपने ऐसी हंसी क्यों कि? इस के उत्तर में वणिक ने स्पष्ट कह दिया कि इसमें हंसी की कौनसी बात हुई, आप जो कुछ मेरे पास रख गये थे वह मैंने आप को लौटा दिया । यह सुन ब्राह्मण चुप चाप मनही मन कलपता अपने घर

चला आया, और कुछ दिनो बाद वह व्यापारी के पुत्र को उस के घर से जेवर पहिने हुये चुरा लाया और उसे अपने घर में छिपा रक्खा। उस लड़के का जितना गहना था वह सब एक बंदर को पहिना कर बैठा दिया। इस के बाद जब वह बनिया अपने लड़के को खोजता खोजता उस ब्राह्मण के घर पर पहुंचा तो उसने देखा कि उसके लड़के का जेवर बंदर पहिने बैठा है, परन्तु लड़के का कहीं पता नहीं है, तब उसने ब्राह्मण से पूछा कि मेरे लड़के का जेवर तो तुमने बंदर को पहिना दिया है और उसे कहां छिपा दिया? इसपर ब्राह्मण ने कहा कि तेरे पुत्र को मैं लेतो आया था परंतु दैव गति से वह बंदर हो गया है इस में मेरा क्या बस है। यह सुन वणिक् ने राजा के यहां जाकर अपनी पुकार की, और सब हाल कहदिया। राजा बड़ा बुद्धिमान था उसने ब्राम्हण को बुलवा कर पूछा कि कहीं बालक का बंदर हो जाना संभव है? यह तुमने क्या कहा? ब्राम्हण ने उत्तर दिया कि महाराज क्या चांदी के रुपै का तांबे का पैसा हो जाना सम्भव है? यदि यह सम्भव है तो बालक का बंदर होना भी सम्भव है। संभव असंभव की बात को सुन राजा ने ब्राम्हण से उसका सविस्तर हाल कहने के लिये कहा

तब उस ब्राम्हण ने अपने जमा किये हुए द्रव्य की सब बातें सच सच कह दीं। इस के बाद राजा ने बिचार कर के ब्राम्हण का सब रुपया बनिये से दिलवा दिया और बनिये को उसके दोष के लिये दंड दे कर ब्राम्हण से उसका पुत्र दिला दिया। इसी से कहा है कि सरल के प्रति सरल व्यवहार करना और शठ के प्रति शठता करै जैसा कि ब्राम्हण ने बनिए के पुत्र को बंदर बना कर किया।

## नराणां पुण्य लक्षणम् ॥ ५८ ॥

बिद्यया तपसा वापि दाने बिनये नच। पुत्रे यशसि तोयेच नराणां पुण्य लक्षणम्।

बिद्या से वा तपस्या से अथवा दान द्वारा वा विनय द्वारा वा पुत्र से किंवा यश से अथवा जलाशय बनवाने से (उसके जल द्वारा) मनुष्य का पुण्य प्रकाश होता है।

## नराणां मातुलक्रमः ॥ ५९ ॥

गोरक्षः सहदेवश्च नकुलो हय रक्षकः। वैराटे कुरु दायादौ नराणां मातुलक्रमः। इति जैमिनिभारते।

कर्ण ने जब राजा शाल्य को धिक्कारा उस समय व्यंग

बचन से कहा कि हे राजा शल्य! जिस समय विराट भूमि में पांडव लोग अज्ञात बास करते थे उस समय में यद्यपि उन्हे सेवा धर्म्म करना पड़ा था तथापि युधिष्ठिर आदि मेरेही कार्य्य में नियुक्त थे परन्तु नकुल सहदेव जो कि कुरुवंश में जन्म लेने पर भी नीच कर्म करते थे अर्थात् गौ और घोड़े की सहीसी करते थे इस में उनका कोई दोष नही था किंतु तुम्हाराही दोष था क्योंकि मनुष्य मामा के ऊपर होते है।

## योग्यं योग्येन युज्यते ॥ ६० ॥

भार्या मे नटकीचेय महद्ध जवनाधमः। जामाता हड्डकश्चैव योग्यं योग्येन युज्यते। इतीतिहासः।

किसी देश में एक ब्राह्मण के घर में एक जुलाहा छद्म बेष से अपनी स्त्री के साथ रहता था। उसकी स्त्री भी जात की नटीन थी, परन्तु दोनो ने अपने को ब्राम्हण प्रसिद्ध कर रक्खा था। कुछ दिनो बाद जोलाहे की स्त्री से एक लड़की पैदा हुई। जब लड़की विवाहने योग्य हुई तो उस के लिये छद्मवेषी वर की तलाश करती समय जोलाहा सब से यही कहता फिरे कि यद्यपि लड़की की उमर विवाह योग्य हो गई है परन्तु जैसा ब्राम्हण मैं हूँ वैसाही जब तक वर न मिलेगा

विवाह न करूंगा। क्योंकि अपात्र को पात्र बनाना अनुचित है। मतलब यह कि दैव का बंधन विचित्र है। अतएव जिस प्रकार के पात्र की खोज में वह था वैसाही मिलभी गया अर्थात जिस ब्राम्हण के यहां वह छद्मवेषी रहता था वह भी उसी के ऐसा ब्राम्हण था और उसकी स्त्री एक हाड़ी जात की थी उसके एक लड़का था वस उसी के साथ उस कन्या का विवाह हो गया और उसके बाद दोनो ही अपनी अपनी चतुराई पर बड़े प्रसन्न हुए। उसके बाद एक दिन अकेले में दोनो बैठे बात चीत कर रहे थे उस समय घर वाला ब्राम्हण उस गुप्त रहस्य को अपने मन में न रख सका और उस छद्मवेषी से कहा कि भाई अब तो तुम्हारा जात्याभिमान दूर हो गया क्योंकि जिस लड़के से तुमने कन्या का विवाह किया है वह मेरी हाड़ी जाती की स्त्री से पैदा है और जब तुमने मेरे साथ बैठ कर भोजन किया तब तुम्हरा ब्राम्हणत्व कहां। यह सुन उस छद्मवेषी ने प्रसन्न हो हंसते हुए उसे उत्तर दिया कि भाई सुनो ईश्वर कभी नही अन्याय करता क्यों कि मेरी स्त्री नटी है और मैं स्वयं जाति का जोलाहा हूं इसीसे जामाता भी हाड़ी मिला। इस लिये ईश्वर सदा योग्य के साथ योजना कराता है।

# अन्येपरे का कथा ॥ ६१ ॥

जातः सूर्य्य कुले पिता दशरथः क्षौणी भुजा मग्रणीः सीता सत्य परायणा प्रणयनी यस्यानु जो लक्ष्मणः। दौर्दण्डे नसमों नचास्ति भुवने प्रत्यक्ष विष्णुः स्वयं रामो येन विड़म्बितोपि विधिना चान्येपरे का कथा। इति महानाटकम्।

जिसका सूर्य कुल में जन्म एवं राजा दशरथ जैसे जिसके पिता और सत्यपरायण सीता जिनकी प्रेयसी और लक्ष्मण जिसके अनुज अथवा जिस के दौर्दण्ड प्रताप के आगे पृथिवी भर मे दूसरा और कोई नही हैं और जो स्वयं विष्णु है जब वही विधाता की करनी से दुःख में पड़े तो भला दूसरे की क्या बात है?

# कर्म्मणा बाध्यतेबुद्धिर्नबुध्या कर्म्म बाध्यते ॥ ६२ ॥

कर्म्मणाबाध्यते बुद्धिर्नबुध्या कर्मबाध्यते। सुबुद्धिर्णयद्रामो हैमं हरिण मन्वगात्।

कार्य्यसे बुद्धि में बाधा पड़ती है किन्तु बुद्धि द्वारा कार्य्य में बाधा नहीं पड़ता, क्योंकि रामचन्द्र सुबुद्धि होने पर भी

# कर्म्मणा बाध्यते बुद्धि र्न बुध्या कर्म्म बाध्यते ॥ ६३ ॥

कर्म्मणा बाध्यते बुद्धि र्न बुध्या कर्म्मबाध्यते । सुबुद्धिरपि यद्रामो हेमं हरिण मन्वगात् ॥

कार्य्यसे बुद्धिमें बाधा पड़ती है किंतु बुद्धिद्वारा कार्य्यमें बाधा नहीं पड़ती । क्योंकि रामचन्द्र सुबुद्धि होने परभी सोनेके हरिण के पीछे दौड़े ।

# समूलंतु विनश्यति ॥ ६४ ॥

मर्म्मज्ञस्य विरोधेन दरोदरनिवासिनः । शिंशुपामूल पत्ताभ्यां समूलंतु विनश्यति ।

किसी देशमें एक राजा अपने भवन में सोरहा था उस समय एक पतला सर्प उसकी नाक में से घुसकर पेटमें चला गया और वहां पेट की वायुको पीकर खूब फूला। धीरे२राजा का पेट फूल निकला । तब उस राजाने चिकित्सकों से अपना हाल कहा उस पर उन लोगों ने उदर रोग समझ उसीकी चिकित्सा करने लगे । परंतु किसी प्रकार से राजा की व्याधि

न छूटी। तब वह निराशहो राजपाट छोड़ यात्रा करने के लिये चला। मार्गमें वह एक जंगलमें पहुँचकर एक पेड़ के नीचे सो रहा। उस शिंशुपा वृक्षकी जड़ में गड़े हुए धन पर एक बड़ा भारी सर्प बैठा रहताथा। उसने राजा को सोए देख उसके पेट के अंदर वाले सर्प से कहा कि, "रे दुष्ट! तू इस राजा काप्राणले क्यों इतने बड़े राज की हत्या कर पाप का भागी बनता है?" यह सुन पेटके अंदर वाले सर्प ने कहा कि, "अरे पापिष्ट! तू क्यों राज धन लेकर उस परकौवे की तरह बैठा हुआ है?" इस धन से कितनेही राजाओंका उपकार हो सकता है। दोनों सर्पों में इस प्रकार वादानुवाद होने बाद वृक्षकी जड़ में रहने वाले सर्प ने गरज कर कहा कि, "जिस प्रकार तू इस राजा को नाश कर रहा है उसी प्रकार यदि वह इस शिशुपावृक्षके पत्तों का रस पीकर तुझे नाशकरे तभी उचित होगा"। इस पर दूसरे सर्पने कहा कि, " जैसे तू मेरे नाशकरने का उपाय बतारहा है उसी प्रकार यदि दैव संयोग से कहीं राजा इस वृक्षके रसको तेरेही शरीर पर डाले तभी तेरे तर्जन गर्जन विसर्जन हों"। इसके बाद राजा दूसरे दिन प्रातः काल उठ कर उस वृक्ष का रस पिया पीतेही उसका उदर रोग आरोग्यहो गया और उसी समय उसने उस वृक्षकी मूलका रस उस जड़वाले

सर्प पर डाल उसका नाश किया। और फिर वह राजा उस गड़े हुए धनको ले राजधानी में आ राज्य करने लगा। इसीसे कहा है कि मर्म्मज्ञ से विरोध करने के कारण दोनोंसर्प समूल नष्ट हुए।

# गतिर्धातु दुराप्तया ॥ ६५ ॥

उपस्थिता निवर्त्तेत निवर्त्तः पुनरापतेत्। विपर्य्ययो वा किन्नस्यात् गतिर्धातु रक्षया।

महाराज श्री कृष्ण चन्द्रके अवतार होने से पूर्व देवकी के विवाह के पश्चात् जिस समय राजा कंस अपनी बहिन देवकी और बहनोई वसुदेव को साथ लिये रथ पर चढ़े जारहे थे उस समय एक यह देव वाणी हुई कि, 'इसी देवकी के आठवें गर्भ से जो बालक होगा वही तेरा नाश करने वाला होगा'। उस देव वाणि को सुनतेही कंस उसी समय देवकी को प्राणसे मारडाल नेके लिये तैयार होगया, तब वसुदेवने साम, दाम, दंड और भेद चारों प्रकारसे उसे देवकी की हत्या करने से रोका। तब कंस ने कहा कि, "यदि इस बात को स्वीकार करो कि देवकी" के गर्भ से जिस समय जो कोई संतान होगा उसे मारडालने के लिये मुझे दे दोगे,, तब तो मैं देवकी को छोड़ दूँगा"। तब वासुदेवने नम

हीमन यह विचार स्वीकार करलिया कि जिस होनहार को रोकने के लिये स्वीकार करता हूँ वह तो टल गई परंतु वही फिर उपस्थित होगी इसीसे विधाता ने कहा है कि, 'विधि का लिखा को मेटनहारा,' जोकुछ होनहार है वह एक दिन अवश्यही हुए बिना नहीं रहता ।

## अहिंसा परमो धर्म्मः ॥ ६६ ॥

अहिंसा परमोधर्म्म इत्येवं परमार्षतः। अहिंसा परमं दानं मित्ये व कवयोविदुः ।

अहिंसा परम धर्म्म है इस पर सभी धर्म्मशास्त्रों की सम्मती है और अहिंसा उत्तम दान है इसे पंडित लोग कह गए है ।

## तस्माद्यज्ञे वधोऽवधः ॥६७॥

यज्ञार्थे पशवः सृष्टाः स्वयमेव स्वयम्भुवा । अतस्त्वां घातयिष्यामि तस्माद्यज्ञे वधोऽवधः ।

यज्ञके निमित्त पशुओंकी स्टष्टि स्वयं स्वयंभू (ब्रह्माजीने ) की है । अत एव तुम्हें नष्ट करुंगा क्योंकि यज्ञमें वध करने से वध नहीं होता । यही मंत्र बलिदान के समय

पशुके शिर में खड्ग स्पर्श करा कर कहना होता है ।

## बिना युद्धेन केशव ॥ ६८ ॥

सूच्यग्रेण सुतीक्ष्णेन भिद्यते याच मेदिनी । तदर्द्धं नैव दास्यामि विना युद्धेन केशव ।

जिस समय श्रीकृष्णचन्द्र पांडवोंकी सहायता करी भूमि के लिये दुर्योधनने मदमत्त हो कहा था कि, हे केशव! तेज सूई की नोकसे जितनी भूमिकी मृत्तिका खुदसकती है उतनी भी बिनायुद्ध किये मैं तुम्हे नही दे सकता ।

## सा बिद्या तन्मतिर्यया ॥६९॥

तत् कर्म हरि तोषंयत् साविद्या तन्मतिर्यया । हरिर्देह भृतामात्मा स्वयं प्रकृतिरीश्वरः ।

कर्म्म वही है जिससे ईश्वर प्रसन्नहो और वही विद्या है जो उनकी ओर झुकाती है क्यों कि वही सबकी आत्मा हैं अथव वही स्वप्रकृति और स्वयं ही ईश्वर है।

## विद्वान् सर्व्वत्र पूज्यते ॥ ७० ॥

विद्वत्वंच नृपत्वंच नैव तुल्यं कदाचन । स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते ।

विद्वत्त्व और नृपत्व यह दोनों कदापि बराबर नहीं होसकते क्योंकि राजा अपनेही राज्य में पूजा जाता है परंतु विद्वान सभी जगह पूजनीय है।

## विद्यारत्न महाधनं ॥ ७१ ॥

ज्ञातिभिर्वन्दने नैव चौरेणाप्पि न नीयते। दाने नैव क्षयं याति विद्यारत्नं महाधनं।

जोकि जातिके विभाग से भी कम नहीं होती और जिसे चोर भी नहीं लेजा सकता ऐसा जो विद्यारुपी रत्न है वह सब धनों से प्रधान है।

## विद्या विहीनःपशुः ॥७२॥

विद्यानाम नरस्य रुपमधिकं प्रच्छन्न गुप्तं धनं,विद्या भोग करी यशः शुभ करी विद्या गुरूणा गुरुः विद्या बंधुजनो विदेश गमने विद्या परं दैवतं विद्या राजसु पुज्यते नहि धनं विद्या विहीनः पशुः।

मनुष्य का रुप विद्याही है और इस लिये वह प्रच्छन गुप्त धन है और विद्याही भोग और शुभकरी होती है तथा गुरु की गुरु विदेशमें विद्याही परम बंधू है एवं विद्या परम देवता

और विद्या राजा द्वारा भी पूजित है अतएव विद्याके समान और दूसरा धन नहीं है। जोपुरुष विद्या नहीं जानता वह पशु है।

## मूर्खस्यनास्त्यौषधं ॥ ७३॥

शक्यो वारयितुं जलेन हुत भुक् छत्रेन वर्षा तपौ नागेन्द्रो निशिताङ्कुशेन समदौ दण्डेन गो गर्दभौ। व्याधिर्भेषजसंग्रहेश्च विविधैर्मन्त्रप्रयोगैर्विषं सर्व्वस्यौषध मस्तिशास्त्रविहितं मूर्खस्यनास्त्यौषधं।

अग्नि को जलद्वारा, एवं वृष्टि और धूप छातेसे तथा हाथी चोरवे अंकुश द्वारा रोके जासकते हैं और गौ भैंस गदहा आदि लाठी से एवं अनेक प्रकार की औषधियों के संग्रह द्वारा व्याधि और मंत्र द्वारा विषको उतार सकते हैं इस प्रकार से सबकी औषधी तो शास्त्र में है परंतु मूर्ख के लिये कोई भी औषधी नहीं है।

## दारुभूतोमुरारिः ॥ ७४ ॥

एका भार्या प्रकृति मुखरा चञ्चलाच द्वितीया पुत्रो ऽप्येको भुवनविजयी मन्मथो दुर्निवारः। शेषः शय्या वसति जलधौ

वाहनं पन्नगारिः स्मारं स्मारं स्वगृहचरितं दारुभूतो मुरारिः।

किसी कवी से एक राजा ने यह प्रश्न किया कि वह इस बात का भेद बतावे कि, "श्रीकृष्णचन्द्र अंत काष्ठमय होकर श्री जगन्नाथ पुरी में क्यों जा बसे ?" इसपर कविने उपरोक्त श्लोक द्वारा उस भेद को राजा से खोल दिया। उसने कहा कि, "मुरारी (कृष्ण) की एक स्त्री सरस्वती तो मुखरा (बकवादी) थीं और दूसरी लक्ष्मी वह चञ्चला थीं और पुत्र जो भुवन बिजयी कन्दर्प वह भी अतिशय दुर्विचार अर्थात् अवाध्य और शेषनाग की शैय्या और समुद्र का बास और उनकी सवारी गरुड़ इस प्रकार अपना गृह चरित्र देख मुरारी काष्ठमय होगए।"

# असारं खलु संसारं ॥७५॥

असारं खलु संसारं सारं श्वशुर मंदिरं। हिमालये हरः शेते हरिः शेते महादधौ।

किसी कवी ने हंसी में बर्णन किया है कि, "यह संसार नितान्त असार है" परन्तु इस में भी जो ससुराल है वही सार है क्यों कि देखो देवों के देव महादेव जी स्वयं ही अपने ससु-

राल हिमालय पर रहते हैं और स्वयं विष्णु भगवान जो हैं वह भी अपने श्वसुर के घर समुद्र में शयन करते हैं।

## असारे खलु संसारे सारमे-तच्चतुष्टयं ॥ ७६ ॥

असारे खलु संसारे सारमेतच्चतुष्टयम् । काश्याम् वासः सतां संगो गङ्गाम्भः शम्भु सेवनम् ।

इस असार ससार में जोसार है वह केवल ये चार पदार्थ हैं, यथा—काशी का वास, साधुकी संगति और गंगाजल का पीना तथा शिवजीकी पूजा ।

## आत्मानं सततं रक्षेत ॥ ७७ ॥

आपदर्थे धनं रक्षेत् दारान्त्र रक्षेद्धनैरपि । आत्मानं सततं रक्षेत् दारैरपि धनैरपि ।

आपदाके लिये धनकी रक्षा करना चाहिये और उस धन से स्त्रीकी रक्षाकरे तथा अपनी रक्षा पत्नी वा धन जिस प्रकार से हो सदा करे ।

## चिंताज्वरो मनुष्याणां ॥ ७८ ॥

चिंताज्वरो मनुष्याणां वस्त्राणामातपोज्वरः। असौभाग्यं ज्वरः स्त्रीणां अश्वानां मैथुनं ज्वरः ।

मनुष्य को चिन्ताज्वर स्वरुप है एवं धूप वस्त्र का ज्वर है और असौभाग्य स्त्रीका ज्वर है तथा घोड़े को मैथुन ज्वर के समान है।

## चिताचिन्ता द्वयोर्मध्ये चिन्ता नाम गरीयसी॥ ७९ ॥

चिता चिन्ता द्वयोर्मध्ये चिन्ता नाम गरीयसी । चिता दहति निर्जीवं चिन्ता प्राणसमं वपुः।

किसी कविने कहा है कि चिता और चिंता इन दोनो में चिन्ता प्रधान है। क्योंकि चिता तो निर्जीवही को जलाती है परन्तु चिंता तो सजीव कोही जलाया करती है ।

## का चिंता मरणे रणे॥ ८०॥

यदि कृष्ण पदे चिन्ता भक्तिस्ते पद पङ्कजे। विषमे दुर्गमे वापि का चिन्ता मरणे रणे ।

यदि श्री कृष्ण के पाद पद्ममें ध्यान और भक्ति हैं तो फिर विष में दुर्ग में अथवा रण में मरने से क्या चिन्ता करना चाहिये।

## किं कुर्व्वंति ग्रहाःसर्व्वे यस्य केन्द्री वृहस्पतिः ॥ ८१ ॥

किं कुर्व्वन्ति ग्रहा सर्व्वे यस्य केन्द्री वृहस्पतिः । मत्तकुंजरसंघातं भिनत्येकोऽपि केशरी ।

जिसके वृहस्पति केन्द्री हैं उस की हानि सब ग्रह एकत्र हो कर भी नहीं कर सकते। जैसे कि मत्तहाथियों के झुडमें एक ही सिंह सबको नष्ट कर सकता है।

## देहि देहि पुनः पुनः ॥ ८२ ॥

अतिथिर्बालकश्चैव राजा भार्य्या तथैव च। अस्ति नास्ति न जानन्ति देहि देहि पुनः पुनः ।

अतिथी,राजा,बालक, और स्त्री ये लोग चाहे हो वा न हो परंतु वे दे २ यही शब्द कहते हैं ।

## स्त्रीबुद्धिः प्रलयङ्करी ॥ ८३ ॥

आत्मबुद्धिः शुभकरी गुरुबुद्धिर्विशेषतः । परबुद्धिर्विनाशाय स्त्रीबुद्धिः प्रलयङ्करी ।

अपनी बुद्धि सुख दायी होती है, और गुरुकी बुद्धि

अच्छी है किन्तु दूसरे की बुद्धि केवल विनाशकारी होती है और स्त्री की बुद्धि प्रलय करने वाली है ।

## उद्योगिनं पुरुष सिंह मुपैति-लक्ष्मीः ॥ ८४ ॥

उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैतिलक्ष्मीर्दैवेन देयमिति का पुरुषा वदन्ति । दैवं निहत्यकुरु पौरुषमात्म्य शक्त्या यत्ने कृते यदि न सिद्धयति कोऽत्रदोषः ।

लक्ष्मी उद्योगी पुरुष के आश्रित रहती है भाग्य में लिखे अनुसार मिलती है यह कायरों का कहना है । इस लिये भाग्य को ताख पर रख अपनी शक्ति भर उद्योग करता रहे यदि यत्न करने पर भी कार्य्य सिद्ध न हो तो उस में दोष नहीं है।

## आजगाम यदा लक्ष्मीर्नारिकेल फलाम्बुवत् ॥ ८५ ॥

आजगाम यदा लक्ष्मीर्नारिकेल फलाम्बुवत् । निर्जगाम यदा लक्ष्मीर्गज भुक्त कपित्थवत् ।

जब लक्ष्मी आती है तो ऐसे जैसे नारियल में जल संचार

होता है और जब जाती है तो ऐसे जैसे हाथी का खायाहुआ कैथ का वृक्ष रह जाता है, अर्थात् मालूम भी नहीं पड़ता।

## भग्नस्नेहेन या मैत्री न सा कल्याण दायिका ॥ ८६ ॥

मालाकार सुतं पश्य पश्यभग्न शिरोमम। भग्नस्नेहेन यामैत्री न सा कल्याण दायिका।

एक माली ने एक सर्प पाल रक्खा था औरउसेदूध आदि अच्छेरपदार्थ बड़ेप्रेमसे खिलाता पिलाताथा।एक दिन माली किसी कार्य वश विदेश जाने लगा तो अपने पुत्र से कह गया कि,"इस सर्प को सर्प न समझ इसे वैसेही भोजनादि कराइया जैसे मैं देता था क्योंकि उसे खिलाने पिलाने के पुरष्कार में बहुतसे धन मिलने की आशा है।"इसके बाद पिता की आज्ञानुसार पुत्र प्रतिदिन बड़े आदर से उसे ( सर्पको ) भोजनादि पहुँचाने लगा। एक दिन सर्प ने प्रसन्न होकर उसे थोड़ा सा धन दिया। उस धन को ले अधिक पाने के लोभसे उसने अपने मन में बिचार किया कि इस सर्प के पेट में जो कुछ द्रव्य भरा हैं सब एकही बेर हाथ आ जायगा। इस अभिप्राय से बहुत आतुर हो उसने सर्प के मस्तक पर

एक लाठी जोरसे मारही तो दी। " आयुष्माणि रक्षति " इस युक्ति के अनुसार सर्प घायल तो हो गया पर मरा नहीं और बड़े क्रोध में भर कर अपने विषैले दांतों को माली के लड़के (अपने घातक) को, ऐसा काटा कि वह यमलोक को सिधारा। इसके बाद जब माली अपने घर लौट के आया तो देखा कि उसका पुत्र मरा पड़ा है यह देख रोता कलपता उस सर्प से जा बोला कि, "रे दुष्ट ! तुझे इतने प्रेम से मैंने पाला पोसा और इतनी तेरी सेवा की परन्तु तूने अपनी जाति स्वभाव को न छोड़ा और मेरे पुत्रके प्राण लिये" इससे मैं ने समझ लिया कि 'स्वभावो दुरति क्रमः' तब सर्पने कहा, " नहीं यह तेरी भुल है क्योंकि 'प्रत्यक्षेकः प्रमाणः' अर्थात हे माली अपने पुत्र को भी देख ओर मेरे मस्तक को भी तेरे पुत्र के मारनेका यही कारण है।"इसीसे कहा है कि, भग्नस्नेह होने से मित्रतामें अमंगलही होता है।

## काकस्य परिवेदना ॥ ८७ ॥

एक वृक्ष समारूढ़ा नानापक्षिविहंगमाः। प्रभाते तु दिशोयान्ति काकस्य परिवेदना।

रात्रि समय एक वृक्ष पर बहुत से पक्षि वास करते हैं परन्तु प्रातःकाल होतेही सब इधर उधर उड़ जाते हैं कोई

यह नहीं पूछता कि किसे क्या दुःख है। इसीसे कहा है कि कोई किसी का नहीं है। और भी।

वनानां वनकाष्ठानां नदी स्त्रोतः सुसंगमः। संगमेपि पुनर्भङ्गः काकस्य परिवेदना।

नदीके प्रवाहमें वह कर वन और वनके काठ सब आपस में मिल जाते हैं परन्तु मिलने परभी फिर छिन्न भिन्न हो जाते हैं। इस लिये किसे क्या दुःख है ?

दुर्दूरान्त पथश्रान्ताश्च्छायां यान्तिच शीतलां। शीतलाश्च पुनर्यान्ति काकस्य परिवेदना।

दूरसे थका हुआ पथिक किसी पेड़की ठंढी छाया में आकर विश्राम करता है परंतु फिर जब वह अपने गन्तव्य पथ की ओर वहां से चलता है तो वह शीतल छाया वहीं पर छूट जाती है। अतएव किसे क्या वेदना है ?

## यः पलाति स जीवति ॥ ८८ ॥

चिरकालं वने वासश्चल दब्रुक्ष न पश्यति। अविचार पुरी दोषात् यः पलाति स जीवति।

एक बहेलिया कपोत को पकड़ने के लिये एक पेड़ की आड़में अपने को छिपाकर धीरे धीरे अपने जालको कबू-

तर तक पहुचाया यह देख एक चतुर कपोत कहने लगा कि, "इतने दिनों से मैं इस बनमें वास करता हूं परन्तु चलता हुआ वृक्ष आजतक नहीं देखा था,।" इस लिये जिस नगर में अविचार दोष है वहां से भाग कर प्राण की रक्षा करना उचित है।

# यो यस्य हृद्यो नहि तस्य दूरः॥

गिरौकलापी गगने पयोदो लक्षान्तरेऽर्कश्च जलेषुपद्मः। इन्दुर्द्विलक्ष कुमुदस्य बन्धुर्योयस्य हृद्योनहिं तस्यदूरः।

एक कबि ने अपने मित्रके बियोग में कहा है कि, "पर्वत पर मोर रहता है और आकाश में मेघ, लाख जोजन के अन्तर पर सूर्य रहते हैं और जलमें कमल और कोई का बन्धु चन्द्रमा दो लाख योजन पर रहता है परन्तु तोभी जो जिस का प्रिय है वह उससे दूर नहीं है।

# यदि किंचिद्वरेदोषः किं धनेन कुलेन किं॥ ८० ॥

आदौ ततोवरं पश्येत्ततोवित्तं ततः कुलायदि किंचिद्वरे दोषः किं धनेन कुलेन किं।

विवाह के पहिले पिता का कर्तव्य है कि वह पहिले वर को देखै उसके बाद उस की आर्थिक दशा को देखै और फिर उसका कुल देखै । क्योंकि यदि वर में कुछ थोड़ासा भी दोष हुआ तो फिर धन वा कुल होनेही से क्या लाभ है।

# येषामन्या गतिर्नास्ति तेषां वाराणसी गतिः ॥ ९१ ॥

माता पितृ परित्यक्त्वा ये त्यक्ता निज बन्धुभिः । येषा मन्या गतिर्नास्ति तेषां वाराणसी गतिः ।

माता पिता और बन्धु बान्धवों से जो त्याग दिया गया वह पुरुष वा जिसकी कहीं गति नहीं है उसकी गति बाराणसीही में है ।

# मधुरेण समापयेत् ॥ ९२ ॥

कुर्यात् क्षीरान्तमाहारं दध्यन्तं न कदाचन । लवणाम्ल कटूष्णानि विदाहीनि च यानितु । तद्दोषं हर्तुमाहारं मधुरेण समापयेत् ।

भोजन के बाद दूध पिये भोजन के पश्चात् दही कभी न खा ना चाहिये । क्योंकि नोन,खट्टा और कटु तथा ऊष्ण द्रव्यादि

ज्वालाकर होते हैं इस लिये इन सब का दोष दूर करने के लिये भोजन के बाद मीठा खाना अच्छा है।

## न भूतं न भविष्यति ॥ ९३ ।

अन्न दानात् परं दानं न भूतं न भविष्यति । अन्नेन धार्यते सर्वं जगदेतच्चरा चरं ।

अन्न दान के बराबर कोई दान नहीं है और न हो सकता है क्योंकि अन्नही द्वारा इस चराचर जगत में लोग दीख पड़ते हैं।

## न दुःखं पञ्चभिः सह ॥ ९४ ॥

स्थातव्यं पञ्चभिःसर्द्धं गन्तव्यं पञ्चभिः सह । भोक्तव्यं पञ्चभिःसर्द्धं न दुःखं पञ्चभिःसह ।

पांच जने के साथ रहना, पांच के साथ जाना और पांच के साथ भोजन करना क्योंकि पांच के साथ इकठे रहने से दुःख नहीं होता।

## नच दैवात परं वलं ॥ ९५ ॥

नच विद्या समो बन्धुर्नच व्याधि समो रिपुः । नचापत्य समः स्नेहो नच दैवात परं वलं ।

विद्या के समान कोई बन्धु नहीं है, रोग के समान कोई शत्रु नहीं, पुत्रके समान स्नेह नहीं और दैव के बल से बढ़ कर कोई बल नहीं है।

## दोषा वाच्या गुरोरपि ॥ ९६ ॥

किन्तु रोष परीतेन गुरुणाभविता गुणः। शत्रोरपि गुणा-वाच्या दोषा वाच्या गुरोरपि।

क्रोधी जो गुरु है उस में भी गुण है। शत्रु में यदि कोई गुण होतो उसे कहना चाहिये और यदि गुरु होने पर भी उसमें कोई दोष है तो उसे स्पष्ट कहना उचित है।

## सत्यं ब्रूयात प्रियं ब्रूयात ॥९७॥

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियं। अप्रिय श्चाहितश्चैव प्रियायापि हित वदेत्।

ऐसी बात कहो जो सत्य भी हो और प्यारी हो। सत्य होने पर भी यदि वह अप्रिय हो तो उसे मत कहो। किन्तु अपने मित्रों से वा प्रिय जनों से, उनके जो हित की बात हो वही कहो चाहे वह उन्हें प्यारी न लगै।

## कः पापिष्टो मसाधिकः ॥ ९८ ॥

गङ्गा यमुनयोर्मध्ये नौकां बहुयथानिच। बहन् विर्म

प्रभक्ष्यामि कः पापिष्ठो ममाधिकः।

एक राक्षस मल्लाह बन कर एक नाव पर ब्राम्हणों को चढ़ा उन्हें गङ्गा यमुना के सङ्गम पर उतार देने के छल से बीच धारा में ले जाकर यह प्रश्न करता कि, "बताओ मेरे से बढ़ कर कौन पापी है," और जब उसके प्रश्न का उत्तर कोई न दे सकता तो उन्हें वह वहीं पर मार डालता। एक बेर एक बड़े बुद्धिमान पंडित ने उसके प्रश्न का नीचे लिखा उत्तर दे ब्राम्हणों की हत्या करने से उसका चित्त फेर दिया। अर्थात् उसी समय से उसने उस कार्य को छोड़ दिया।

# स पापिष्ठ स्ततोधिकः॥ ९९ ॥

आशां दत्वान दद्याद्यः दातारं प्रति षेधकः। स्वयं दत्वा हरेद्यस्तु स पापिष्ट स्ततोधिकः।

आशा देकर जो व्यक्ति नहीं देता और जो दूसरे को देने से रोकता है और जो व्यक्ति स्वयं देकर छीन लेता है वह व्यक्ति ब्रह्महत्या करनेवाले से भी अधिकतर पापी है।

# आहारोपि मनुष्याणां जन्मना सह जायते ॥ १०० ॥

धर्म्ममेव चिन्तयेत् प्राज्ञः स्वाहारं नैवचिन्तयेत्। आहारोपि मनुष्याणां जन्मना सह जायते ।

बुद्धिमान पुरुष को अपने पेट की चिन्ता न कर सदा धर्म्म की चिन्ता करनी चाहिये क्योंकि ईश्वर मनुष्य के जन्म के साथही उसके आहार की भी सृष्टि करता है ।

## बव्हारम्भे लघु क्रिया ॥१०१॥

अजायुद्धे ऋषिश्राद्धे प्रभाते मेघडम्बरे । दम्पत्योःकलहे चैव वह्वा रम्भे लघु क्रिया ।

बकरों की लड़ाई एवं फल मूलादि खाने वाले ऋषि जो श्राद्ध करते हैं और प्रातःकाल जो मेघ घिर आते हैं तथा स्त्री पुरुष के झगड़े आदि में आरम्भ तो बड़ी तेजी से होता है परन्तु अंत में कुछ भी नहीं रहता ।

## हतो यज्ञस्त्व दक्षिणः ॥१०२॥

हतमश्रोत्रिये दानं हतं सैन्यमनायकं । हता रूपवती बन्ध्या हतो यज्ञस्त्व दक्षिणः ।

दान पुण्य करके यदि श्रोत्रिय ब्राह्मण को दान न दिया तो उस दान का फल नहीं होता और सेना में सेनानायक न हो तो वह सेना नाश हो जाती है और रूपवती स्त्री होने

पर भी यदि वह बांझ है तो उसका रूप मिट्टी है। यज्ञ करके दक्षिणा न दे तो वह यज्ञ नष्ट हो जाता है।

## ललाट लेखो न पुनः प्रयाति ।१०३।

लब्धव्यमर्थं लभते मनुष्यो दैवोऽपितं वारयितुं न शक्तः।
अतो न शोचामि न विस्मयो मे ललाट लेखो न पुनःप्रयाति।

महाराजा विक्रमादित्य के राज्य में एक ब्राह्मण था उसके जब कोई लड़का हो, वह होतेही मर जाता था । ब्राह्मण ने अपने लड़कों को जिलाने के लिये बहुत कुछ जप पूजा आदि अनुष्ठान किया परन्तु किसी से कुछ न हुआ। तब वह दुखी हो उस दोष को राजा पर लगा, राजदरबार में गया और वहां राजा को बहुत कुछ लाञ्छन लगा कहने लगा कि, "हे राजा ! तेरेही पाप से मेरे सन्तान जनमतेही मर जाते हैं।" इसके उत्तर में राजा ने शान्त भाव से ब्राह्मण से कहा कि, "अच्छा, अब जिस रोज तेरे पुत्र हो उसके छठें दिन मुझे खबर दे मैं उसके जीने का उपाय कर दूँगा।" यह सुन ब्राह्मण अपने घर चला आया। थोड़े दिनों बाद ब्राह्मण को लड़का हुआ और जिस रोज छठां दिन आया तो उसने राजा की आज्ञानुसार उन्हे खबर दी, खबर पातेही राजा ब्राह्मण के घर आकर सूतिका गृह के दरवाजे पर पहरा देने लगे । रात

को जब सारा संसार निद्रादेवी की गोद में पड़ा और चारों ओर सन्नाटा छा गया उस समय विधाता द्वार में घुसने लगी। तब राजाने उसे रोक कर कहा, "तूँ कौन है?" इस पर विधाता ने क्रोध से कहा, "तूँ हट जा मुझे घरमें जाने दे," परन्तु राजा ने कहा कि, "जबतक मुझे यह न मालूम हो कि, तुम कौन हो, मैं कदापि न जाने दूँगा।" तब विधाता ने कहा कि, "मैं विधना हूं और इस घरमें जो बालक हुआ है उसके करम में लिखने जाती हूं।" यह सुन राजाने प्रसन्न हो बड़े विनीत भाव से कहा कि, "जब आपके मुझे प्रत्यक्ष दर्शन हुए हैं तो कृपा करके आप मुझे यह बता दें कि उस बालक के करम में क्या लिखें-गी।" विधाता ने उत्तर दिया कि, "अभी नहीं जब मैं भीतर से लिख आऊंगी तब कहूंगी कि उसके करम में क्या लिखा है।" इसके बाद जब वह लौट कर जाने लगी तब राजाने पूछा तो उसने कहा कि, "उसके करम में यही लिखा है कि वह एक वर्ष तक जियेगा इससे अधिक नहीं।" यह सुन राजाने उन-की बहुत स्तुति आदि की कि जिसमें वह बालक जीता रहे तब विधाता राजा की प्रार्थना पर प्रसन्न हो बोली कि, "अच्छा जिस समय नीचे लिखी समस्या की पूर्ति हो जायगी उसी समय वह बालक फिरसे जी जायगा।"

'लब्धव्यमर्थं लभते मनुष्यः' अर्थात् मनुष्य जिस वस्तु के पाने योग्य होता है वही उसे मिलती है उसके अतिरिक्त उसे कुछ भी नहीं मिल सकता।

जब प्रातःकाल को राजा उठे तो उन्होंने ब्राह्मण से रात की सब बातें कह उसे बहुत कुछ आशा और संतोष देकर अपने भवन को लौट आए। इसके बाद जब एक वर्ष पूरे हो गए तो उसी दिन ब्राह्मण का पुत्र मर गया। यह समाचार सुनतेही राजा विक्रमादित्य ब्राह्मण के घर पर आए और सन्तोष देकर मृत बालक को गोद में उठा घरसे बाहर निकले और वहीं से 'लब्धव्यमर्थं लब्धव्यमर्थं' यह कहते कहते पागलों की तरह अनेक देशों में घूमते हुए अंत को एक नगर में जाकर एक ब्राह्मण के द्वार पर पहुँचे। उस ब्राह्मण के यहां राजा की, मन्त्री की, वणिक की, तथा सेनापति की कन्या शास्त्र आदि पढ़ने के लिये आती थीं। एक रोज ब्राह्मण कहीं चले गए थे और उनका पुत्र उन लड़कियों को पढ़ाने लगा। एक दिन उनका पाठ समाप्त कर ब्राह्मण के पुत्र ने उनसे कहा कि, "आज तुम लोगों का पाठ पूरा हो गया इस लिये अब तुम लोगों को गुरु दक्षिणा देनी चाहिये।" यह सुन वे सब बड़ी प्रसन्न हुईं और बोलीं कि, "हे प्रभु! यदि हम लोगों का परिश्रम सफल

हो तो आप जो मांगेगें वही हम सब देंगी, कौन ऐसी वस्तु है जो हम आपको नहीं दे सकतीं।" तब ब्राह्मण पुत्रने कामवश हो लज्जा आदि को धों कर कहा कि, "तुम चारो मुझ से विवाह करो।" यह सुन वे सब बड़ी घबड़ाईं क्योंकि वे चारो दिनरात शिवजी की पूजा इसी लिये करती थीं कि उनका विवाह राजा विक्रमादित्य से हो और वह चिर दिन की आशा अब गुरु द-क्षिणा में जाती है इस से तो हम लोगों के प्राणही निकल जाएं तो अच्छा हो, परन्तु क्या करें प्रतिज्ञा में बंध चुकी थीं इस लिये उन्होंने ब्राम्हण पुत्रसे एक निश्चिति स्थान पर मिलने को कहा। इन लोगोंकी सब बातें महाराज विक्रमादित्य ने छिपे २ सुनली थीं। उन्होंने यह सब वृत्तान्त ब्राह्मणकी स्त्री से कह कर उस ब्राह्मण पुत्र को घरमें बंद करवा दिया और आप नियत समय पर उसी निश्चित स्थान पर जा पहुंचे और रात के पहिले पहर जब राज कन्या वहां आई और उसने पूँछा, "क्या गुरु पुत्र आगए" उसके उत्तर में छद्मवेशी राजाने कहा "हूँ" तब राज कन्याने जैमाल उसके गले में डालदी, जैमाल पड़तेही छद्मवेषी विक्र-मादित्य ने छिपे २ अपना परिचय देने के लिये कहा कि, "लब्धल्यमर्थं" यह वाक्य सुनतेही राजकन्या ने समझा कि ब्राह्मण पुत्र के बदले एक विक्षिप्त से संयोग हुआ और अपना करम हाथ से ठोंक कर बोली कि, "लभते मनुष्यः" अर्थात् जो

भाग्य है वही मिलता है । फिर रात के दूसरे पहर उसी प्रकार मन्त्री की कन्या ने भी जैमाल पहिना दी और उस विक्षिप्त ने उन दोनों पदों को जोड़ कर कहा, तब मन्त्री की कन्याने कहा कि, "दैवोऽपितं वारयितुं न शक्तः" अर्थात् देवता भी उसे रोक नहीं सकते । उसके बाद तीसरे पहर वणिक की कन्या आई और उसने भी उसी प्रकार जैमाल विक्षिप्त को पहनाई तो विक्षिप्त ने आधा श्लोक कहा तब उस कन्या ने तीसरा चरण पूरा कर के कहा कि, "अतोनशोचामि न विस्मो"। अर्थात् इस में मुझे न तो कुछ आश्चर्य ही है और न मुझे कुछ सोच ही है। फिर चौथे पहर सेनापती की कन्याने भी उसी प्रकार भ्रम में पड़ जैमाल डालदी तब छद्म वेषी राजाने तीनो चरण कहे उस पर सेनापती की कन्याने कहा कि, "ललाट लेखो न पुनः प्रयाति" अर्थात् भाग्य में जो लिखा है उस से अन्यथा नहीं होता, इस चतुर्थ पद के कहतेही समस्यापुरी होगई और वह पूर्वोक्त ब्राह्मण का मरा पुत्र फिर जी उठा। तब राजा विक्रमादित्य सब से पहिले अपनी राजधानी में आकर उस ब्राह्मण को उसके मृत पुत्र को जीता जागता लाकर देदिया ।

मतलब यह कि जो वस्तु पाने योग्य है वही मिलती है शोच वा आश्चर्य करना व्यर्थ है क्यों कि भाग्य के लिखे को कोई भी नहीं मेट सकता ।

